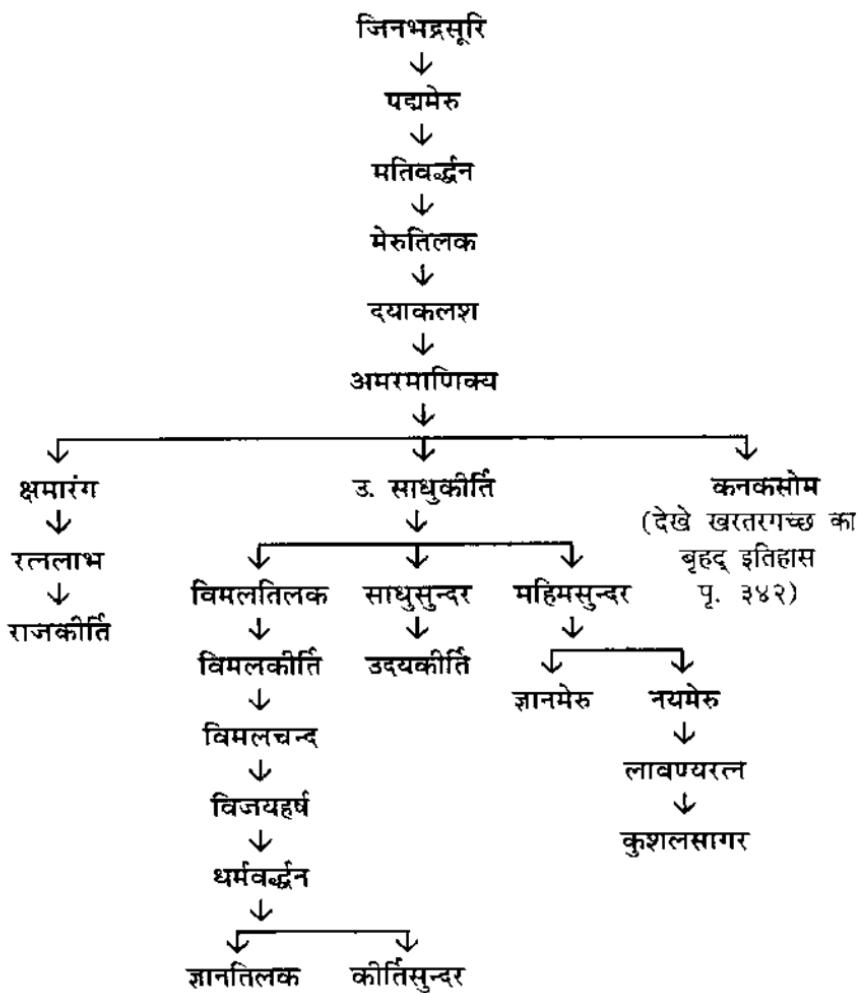


**श्री ज्ञानतिलकवर्णीतम्  
शब्दीपार्थनाथदिस्तोत्रत्रयम्**

सं. म. विनयसागर

साहित्य के क्षेत्र में अद्भुत छटा बिखेरने वाले उपाध्याय धर्मवर्द्धन (धर्मसी) के शिष्य ज्ञानतिलक भी उत्कृष्ट कोटि के विद्वान थे। ज्ञानतिलक श्रीजिनभद्रसूरि की परम्परा में हुए हैं अतः उनकी गुरु परम्परा का वंशवृक्ष देना आवश्यक है।



उपाध्याय धर्मवर्द्धन विजयहर्ष के शिष्य थे। इनका प्रभाव राजा, महाराजाओं पर भी था और जोधपुर नरेश तथा बीकानेर नरेश इनके भक्त थे। इनके द्वारा रचित श्रेणिक चौपाई, अमरसेन वयरसेन चौपाई, सुरसुन्दरी रास इत्यादि प्रमुख कृतियों के साथ ३०० से अधिक लघु रचनाएं भी प्राप्त होती हैं। इन रचनाओं का संग्रह धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली के नाम से विस्तृत प्रस्तावना के साथ पूर्व में प्रकाशित हो चुका है। जिसके सम्पादक अगरचन्द भैंवरलाल नाहटा थे।

ज्ञानतिलक कहाँ के रहने वाले थे, ज्ञात नहीं। किन्तु, इनका जन्मनाम नाथा था और जिनरत्नसूरि के पट्ठधर जिनचन्द्रसूरि ने संवत् १७२६ वैशाख बदि ११ चिरकाना में तिलकनन्दी स्थापित की थी। तदनुसार इनका दीक्षा नाम ज्ञानतिलक रखा और विजयहर्ष के पौत्र शिष्य बनाए (दीक्षानन्दी सूची)। सम्भवतः ये राजस्थान प्रदेश के ही होंगे।

ज्ञानतिलक रचित साहित्य में १. सिद्धान्त चन्द्रिका वृत्ति (अभी तक अप्रकाशित है।) बिकानेर के ज्ञान भण्डार के अन्तर्गत महिमा भक्ति ज्ञान भण्डार में इसकी प्रति प्राप्ति है।

२. विज्ञसि पत्र—यह पत्र जिनसुखसूरि को ज्ञानतिलक ने भेजा था। (इसका प्रकाशन सिंधी जैन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत विज्ञसि लेख संग्रह प्रथम भाग में आचार्य जिनविजयजी ने प्रकाशित किया है। जो पृष्ठ १०७ से ११३ में प्रकाशित है। यह विज्ञसि विजयवर्द्धनगणि के नाम से छपी है जो कि ज्ञानतिलक की ही है।)

३. विज्ञसि पत्र—यह अप्रकाशित है और अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में प्राप्त है। इसके अलावा कुछ लघु कृतियाँ भी प्राप्त हैं।

### प्रस्तुत कृतियाँ

इन तीन लघु कृतियों के माध्यम से कवि ने अपना पाण्डित्य भी प्रदर्शित किया है। प्रत्येक कृति में उनका अनूठापन नजर आता है।

प्रथम कृति गौडीपार्श्वनाथ स्तोत्र शृङ्खलाबद्ध है। साथ ही इसकी भाषा संस्कृत है और देशी रागिनी में इसकी रचना की गई है।

द्वितीय कृति सरस्वती स्तोत्र की रचना पद्य १ से ५ मात्रिक सोरठा छन्द में की गई है और पद्य ६ से १४ तक त्रिभंगी छन्द में और १५ वाँ पद्य षट्पदीछन्द में है। त्रिभंगी छन्द का लक्षण - इसमें सात चतुर्मात्रिक होते हैं और अन्त में जगण निषिद्ध है।

तृतीय कृति दादा जिनकुशलसूरिजी की स्तुति में प्रारम्भ के ५ पद्य आर्या छन्द में रचित हैं, ६ से १३ तक त्रिभंगी छन्द में और १४ वाँ कविता के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रारम्भ के ५ पद्य छोड़कर त्रिभंगी छन्द में निरूपित दादा जिनकुशल-सूरिजी छन्द का पूर्व में कई ग्रन्थों में प्रकाशन हुआ है, उसी के अनुसार मैंने भी दादागुरु भजनावली में उन्हीं का अनुकरण किया है, प्रारम्भ के पाँच पद्य उसमें भी नहीं दिए गए हैं। संस्कृत के कवि भी लोक देशों का आश्रय लेकर और प्राकृत के प्रचलित छन्दों में रचना करने में अपना गौरव समझते थे इस दृष्टि से ये तीनों प्रतियाँ श्रेष्ठ हैं।

विद्वद्वजनो के लिए यह तीनों स्तोत्र प्रस्तुत हैं :-

### श्रीज्ञानतिलकप्रणीतम् गवडीपार्श्वनाथस्तोत्रम्

शाश्वतलक्ष्मीवल्लीदेवं, देवा नतपदकमलं रे ।

मलिनकलुषतुष्वरणे वातं, वार्तकरं कृतकुशलं रे । शा०॥१॥

शलभनिभे कर्मणि दावाग्नि, वाग्निर्जित वद जीवं रे ।

जीवदयापालितसमविश्वं, विश्वसमयरसक्षीबं रे । शा०॥२॥

क्षीबितगर्वितदुर्जयमोहं, मोहितबहुजनकोकं रे ।

कोकिलकूजितकलरववाचं, वाचा प्रीणितलोकं रे । शा०॥३॥

लोकितसदसन्नानाभावं, भवभयदर्शितपारं रे ।

परकुमतीनं हतपाखण्डं, खण्डितमारविकारं रे । शा०॥४॥

कारं कारं विनयं वन्दे, वन्द्यमहं श्रितनागं रे ।

नगसुदृढं श्रीगौडीपार्श्वं पाश्वर्वेशं जितरागं रे । शा०॥५॥

रागान्त्रिमम् यम सुनिकामं, कार्म पूरय सततं रे ।  
सन्ततमस्तु च तव मे सेवा, सेवक विश इति घटतं रे ॥३॥

(स्थाधरावृतम्)

इत्थं गौडीशपाश्वं पृथुतरयशसं पार्श्वपाश्वाख्ययक्षं,  
बिभ्राणं ज्ञानपूर्वं तिलकमतितरां ये जना भक्तिमन्तः ।  
सेवन्ते सन्नियुज्य प्रवरकण्पुटं मूर्धिं संजातहर्षं,  
यन्नामः स्थाधरास्ते प्रतिदिनमचिरात् सातजातं लभन्ते ।

इति श्री गौडीपार्श्वजिनस्तवनम्



### सरस्वती-स्तोत्रम्

जय जय वागीशो जये दात्रि ज्ञाति देहि ।  
कुरु कुरु कमलासिनि कृपां धाम स्वं सन्धेहि ॥१॥  
विश्वं वागुपवेणिता प्रीणयसि त्वं वाणि ।  
अधितिसुधामधु ह्यन्तो वीणां किं करवाणि ॥२॥  
कालिदासप्रमुखान्युरा मन्दान्मतिभारेण ।  
व्यधिया गुरुतुल्यान्वरे साधितबहुसारेण ॥३॥  
तव देवि क्षणतो द्रुतं कीटः करितामेति ।  
तस्य न चित्रं किल कृतौ मनसा यदभिप्रैति ॥४॥  
श्रुत्वा त्वापि समागमं लघुशिशुकं विज्ञाय ।  
भिनु मे कामितसञ्चयं विधिवद्रिति विधाय ॥५॥

(अथ त्रिभंगीवृतम्)

हरिहरधात्राद्या जगदभिवाद्यास्तैरभिवाद्या सुस्मार्या,  
जनजनितानन्दा मुखारविन्दा भासितचन्दा हृदि धार्या ।  
अद्भुतवागीशा प्रणतदिगीशा श्रितभूमीशा भक्तिभरं,  
त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥१॥  
जगतीविख्याता जगतां माता शब्दब्राता निष्णाता,  
सेवककृतसाता योगीध्याता सदावदाता स्वाम्नाता ।

विद्वज्जनसेव्या जनतासेव्या बोधैर्भव्या विगतदरं,  
 त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥२॥  
 विकसितकज्ञनेत्रा परिहितनेत्रा पूतक्षेत्राऽभ्यस्तकला,  
 गतिजितकलहंसा शिरोवतंसा यानितहंसा गुणविमला ।  
 अमृतद्युतिवदना मौक्तिकरदना धृतधीसदना सुखनिकरं,  
 त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥३॥  
 कलकण्ठीकण्ठा गेयोत्कण्ठा सुन्दरकण्ठा प्रियतालैः,  
 सङ्गीतविभेदा वेदितवेदा खेदितखेदाऽङ्गुलिचालैः ।  
 स्वररसझरवाहाऽतिशयवगाहा यदुपाविण्यदुदितकरं, (?)  
 त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥४॥  
 प्रतिवर्णविकल्पाः स्वरविधिकल्पाः कल्पाकरविस्पष्टा,  
 जातिव्यक्तिभ्यां सदयुक्तिभ्यामस्तस्फेटिभुवि शिष्टा(?) ।  
 यद्यानादिस्थं सर्वं सुस्थं व्यक्तीचक्रे परमपरं,  
 त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥५॥  
 जाङ्ग्याम्बुधिमग्ना-लाकृतिभुग्ना स्नेहाभुग्ना जननिचया,  
 अज्ञानतमोन्धा यथा दिवान्धा लसदमृताम्भा विधिनिचया ।  
 सर्वास्तान् क्षणतः सद्वीक्षणतस्सलक्षणतस्मित्सुवरं ।  
 त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥६॥  
 सत्पुस्तकहस्ता चेतःशस्ता बुद्धिनिरस्ता बुधताया,  
 वाग्भङ्गीतरङ्गा निर्जितगङ्गा सत्कतरङ्गा सच्छाया ।  
 उपनिषदादाना वरं ददाना तत्त्वनिदाना मुत्प्रकरं,  
 त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥७॥  
 सारस्वतरूपा ज्योतीरूपा भास्वदरूपा नित्यस्था,  
 देवेन्द्रैर्नूता शुद्धाकूता विद्यापूता मध्यस्था ।  
 ओङ्कारोदारा चेष्टेस्कारा ज्ञानद्वारा घनरुचिरं,  
 त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥८॥

(षट्पदकवित्वम्)

विदिता कल्पलतेव सिद्धिवृद्धेः पूरणतः,  
क्षोणिजनतायाश्च देव्यसि त्वां मे भणतः ।  
शुभवति शुभभावेन नयनप्राघुणकीकृत्यं,  
वितर वितर मे मुहु तत्त्वरायं संस्कृत्य ।  
विजयादिहर्षमुत्कर्षतः सविजयवद्धनकं सदा ।  
सदज्ञानतिलकदायं ततं ज्ञत्व सौख्यकरण मुदा ॥१॥

इति सरस्वती स्तोत्रं



### पितामह - श्रीजिनकुशलसूरिछन्दः

(आर्याच्छन्दः)

जिनकुशलं सूरीशं रक्त्रयप्रभृतिरक्तवारीशम् ।  
गायामि मुनिगणेशं वागनवद्यैः शुभं पद्यम् ॥१॥  
पञ्चे पंचमअरके विष्णमे घनतापकारके तसान् ।  
सुरतरुरिव यो जीवान् सुखयति सच्छायमधिकददः ॥२॥  
यत्कीर्तिप्रस्फूर्त्या विचित्रमपि चित्रितं हि भुवनतलम्,  
विशदमिव भाति सर्वं तं सततं कीर्तयामि हितार्थम् ॥३॥  
योऽरण्येषूदन्यत यः चापः पाययत्यहो अभिकान् ।  
असमयजातघनौघं विकुर्व्य विद्युत्सनितमित्रम् ॥४॥  
धनी धनीरपि मनुजः सुतीरपि स्यात् सुती परमभक्तः,  
सुखी सुखीरपि नित्यं भवतः शुभदृष्टिसृष्टिचयात् ॥५॥

(त्रिभंगीछन्दः)

यो भूमीषष्ठे पृथुलवरिष्ठे गाढगरिष्ठे भातितरां,  
यः कृच्छ्रं कक्षं मौर्वाध्यक्षं सर्वसमक्षं दातितराम् ।  
कुर्वन्निरपायं सौख्यन्तरायं छेदितमायं बुद्धिगुरुं,  
तं वारंवारं सेवे स्फारं सच्छ्रीकारं कुशलगुरुम् ॥१॥

यं दर्पकरूपा मधुरसकूपाः शश्वद् भूपाः सेवन्ते,  
 यं नामं नामं सदा प्रकामं पूरितकामं देवं ते ।  
 भास्वद्वेषा सुषमारेखा दृप्यलेखा विश्वगुरुं,  
 तं वारम्बारं सेवे स्फारं सच्छीकारं कुशलगुरुम् ॥२॥  
 येन च घनदावं प्रज्वलदावं संभृतभावं पुरं कृतं,  
 यन्निशिं शखं मृदुशतपत्रं पत्तीपत्रं विषममृतम् ।  
 धरणीगमनानां त्वदध्यानानान्तरमानानां साधुगुरुं,  
 तं वारम्बारं सेवे स्फारं सच्छीकारं कुशलगुरुम् ॥३॥  
 यस्मै भूहरये दीप्त्या हरये भयगजहरये भवतु नमः,  
 कामितफलकर्त्रे दमरविहर्त्रे जगतो भर्त्रे पुनर्नमः ।  
 श्रीकरणप्रभवे मुनिताप्रभवे विभुताविभवे सफलतरुं,  
 तं वारम्बारं सेवे स्फारं सच्छीकारं कुशलगुरुम् ॥४॥  
 यस्माद् गुरुनाम्नो बहुगुणधामनस्तव गुणदाम्नो नुः परमा-  
 न्नेशुः सपायाः सदान्तराया दुःखनिकाया गतभ्रमात् ।  
 स भवति श्रेयो यस्माच्छ्रेयो बहुलप्रेयो धर्मगुरुं,  
 तं वारम्बारं सेवे स्फारं सच्छीकारं कुशलगुरुम् ॥५॥  
 यस्य श्रीस्तूपाः पूता यूपा इव सदूपा भुवनतले,  
 सत्केतूतुंगा लसत्सुरंगा नानाभंगा सन्त्यग्निले ।  
 चन्दनघनसाराद्याश्रितसारा गन्धोदाराः शान्तगुरुं,  
 तं वारम्बारं सेवे स्फारं सच्छीकारं कुशलगुरुम् ॥६॥  
 यस्मिन् मार्त्तण्डे तेजश्चण्डे भारतखण्डे सामुदिते,  
 तम इव न व्याधि क्वेक दुराधिः स्वान्तसमाधिः स्यात् प्रीते ।  
 न च बन्दी रोगा न च दुर्योगा भासुरभोगा भूमितरुं,  
 तं वारम्बारं सेवे स्फारं सच्छीकारं कुशलगुरुम् ॥७॥  
 करुणारससागर ! नूतननागर ! जनकृतजागर ! शुभशालिन् !,  
 देवेष्टं पूरय दुःखं दूरय शत्रूंश्वरय मुनिमालिन् !

भक्त्या भक्तानां त्वत्सक्तानां त्वद्रक्तानां सुखितमरुं,  
तं वारम्बारं सेवे स्फारं सच्छीकारं कुशलगुरुम् ॥८॥

(कवित्वम्)

विष्णद्वृमगजराज ! रुचिरविरुद्धानां धारय,  
कलियुगसुरघटतुल्य ! विपुलविद्यानां पारय ।  
विजयहर्षभृतां नृणां विजयबद्धनसत्करां,  
विदधच्चरितदेवं धरणितलजीवाधाराम् ॥  
जिनचन्द्रसूरिपट्टे स्थितस्तावद् विजयस्व द्रुतम् ।  
यावत् सुराद्रिसूरौ त्वकं 'ज्ञानतिलक' दो विश्रुतम् ॥९॥<sup>१</sup>

C/o. प्राकृत भारती,  
13-A, मैन मालवीय नगर  
जयपुर ३०२०१७



१. ये रचनाएं काफी अशुद्ध लगती हैं। यदि सम्पादकजीने शुद्ध वाचना के लिए प्रत्यन्तरोंसे मिलान इत्यादि रूप प्रयत्न किया होता तो काफी आनन्द होता।

- श्री.